समर्पण

ए.ए.खान

शैलजा गांगुली

के साथ बातचीत में

YogiImpressions®

YogiImpressions®

SURRENDER
(in Hindi)
First published in India in 2004 by
Yogi Impressions LLP
1711, Centre 1, World Trade Centre,
Cuffe Parade, Mumbai 400 005, India.
Website: www.yogiimpressions.com

First English Edition, December 2004
First Hindi Edition, September 2018

Copyright © 2004 by A. A. Khan

Cover photograph: Fawzan Husain
Courtesy: Mid-Day Publications

All rights reserved. This book may not be reproduced in whole or in part, or transmitted in any form, without written permission from the publisher, except by a reviewer who may quote brief passages in a review; nor may any part of this book be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means electronic, mechanical, photocopying, recording, or other, without written permission from the publisher.

'Disclaimer:
All rights in respect of the copyright in the Book vest with the Author. The views, expressions and ideas expressed herein are solely that of the Author and not that of the Publisher. The Publisher does not assume any responsibility for the accuracy of the information contained herein. Although to the best of the Publisher's knowledge all the information contained in the Book is accurate, the Publisher shall assume no responsibility for any injury and/or damage that may result to persons or property by way of defamation or otherwise, as a result of any of the contents of this book.'

ISBN 978-93-82742-96-8

Printed at: SAP Print Solutions Pvt. Ltd., Mumbai

ये क़िताब उन सभी पुलिस कर्मियों को अर्पित है जो निरंतर फ़र्ज़ निभाते हैं, बिना इनाम या प्रशंसा की अपेक्षा किये।

और ख़ास तौर से मेरे ए.टी.एस. के सदस्यों के लिए, जिन्होंने खतरनाक आतंकवादियों और अपराधियों से जूझने में क्षमता से कहीं ज़्यादा धैर्य और निष्ठा का प्रदर्शन किया।

विषय-सूची

भूमिका vii

आभार ix

ड्रामा आधी रात का 1

चाही कलम, उठाई बंदूक 9

मौत के साए में 17

नापाक युध्द 26

ज़िन्दगी की पाठशाला 3

काम ही काम 48

ऑपरेशन लोखंडवाला 55

मेरी बंदूक और मैं 64

किस्सा कट्टरपंथियों का 69

मिली सज़ा – पाया इनाम 79

आप की सेवा में 85

भेड़चाल का कहर 95

मेरा ईश्वर और मैं 101

समर्पण 104

अंतिम टिपण्णी 114

भूमिका

जब इस क़िताब की कल्पना की जा रही थी और खान साहब ने इसके बारे में मेरी राय पूछी तो मुझे जवाब देने में ज़्यादा समय नहीं लगा। मैंने जो भी मुझे कहना था सीधे-सादे शब्दों में उन्हें बोल दिया, ठीक उन्हीं के स्टाइल में जिसके लिए वे मशहूर थे।

क़िताब कैसी नहीं होनी चाहिए, इस पर हम दोनों की सहमति थी और मुझे इस बात से खुशी हुई। क़िताब ना तो उनके जन्म के बारे में है – कि वो कब, कितने बजे और कहाँ पैदा हुए; और ना ही उनकी जीवनी। ये क़िताब उनकी उपलब्धियों और कारनामों का बखान भी नहीं थी। ये क़िताब उन घटनाओं के बारे में होगी, जिनका उन्होंने उनके कार्यकाल के दौरान सामना किया; टीम के साथ उनका रिश्ता क्या था, उनकी असफ़लताओं के बारे में और उन सबकों के बारे में जो एक पुलिस वाला होने के नाते इन्हें सीखने को मिले। इस क़िताब का उद्देश्य इस आशा से उनके तजुर्बों को पाठकों के साथ बांटना होगा कि जीवन को बेहतर करने के लिए कुछ मदद मिल सके। ये सच्चाई की खोज के बारे में होगा। एलडस हक्सली कहते है 'तजुर्बा वो नहीं जो आपके साथ होता है; घटनाओं के साथ आप क्या करते हैं, ये तजुर्बा है।'

आम तौर पर तो मेरा वास्ता आत्मोन्नति के विषय पर लिखी क़िताबों से होता है, पर मुझे लगा इस क़िताब में भी एक अच्छी कहानी है। एक पुलिस वाला जो खतरों से खेलता आया हो, और जिसके सिर पर सदा मौत का साया हो; किसी कहानी को रोचक बनाने के लिए और क्या चाहिए? खान साहब जांबाज़ी के लिए मशहूर थे और उनके बारे में यह भी प्रसिध्द था कि वो कोई आरामपरस्त योध्धा नहीं थे बल्कि शेर की गुफ़ा में घुसकर उसका शिकार करते थे। ये तो तय था कि क़िताब की रफ़्तार तेज़ और कहानी रोमांचक होगी।

चुनौती ये थी कि क़िताब को आज के दौर के लिए ही नहीं बल्कि हर दौर के लिए उपयुक्त कैसे बनाया जाए? ज़ाहिर है पुलिस वालों की ज़िन्दगी से हमें बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है। अधिकांश लोग मान लेते हैं कि दिन भर के काम के बाद रात का खाना घर पर ही होगा, पर पुलिस के पेशे में ऐसा मान लेना घातक हो सकता है। अगर हम अपने काम में तनाव महसूस करते हैं तो सोचिये पुलिस की क्या हालत होती होगी, ख़ास तौर से जब उन्हें जान-लेवा परिस्थितियों का सामना करना पड़ता होगा, किसी निजी स्वार्थ से नहीं बल्कि आम जनता के हित के लिए। और इसका प्रतिफल उनको क्या मिलता है? पुलिस के पेशे को समझने के लिए श्रुन्यु सुज़ूकी के ये शब्द शायद पर्याप्त होंगे 'ज़िन्दगी उस नाव पर चढ़ने जैसी है जो समुन्दर में जाकर डूबने वाली हो।'

तो चलिए खान साहब और उनकी टीम के साथ उन अँधेरी खौफ़नाक गलियारों में, उनके जीत का जश्न उनके साथ मनाइये, और उनकी नाकामियों में उनका हौसला अफज़ाई कीजिये। क़िताब पढ़कर आप ईश्वर का शुक्रिया करेंगे कि हर शाम आप अपने प्रियजनों के पास सुरक्षित घर पहुँचते हैं। हम ये आशा करते हैं कि ये क़िताब आपको पुलिस वालों की याद ज़रूर दिलाएगी।

गौतम सचदेवा
नवम्बर 2004

आभार

मेरी पत्नी माह्ज़बीन की सहायता के बिना ये क़िताब असम्भव थी। लिखने की क्षमता पर मुझसे कहीं ज़्यादा उनको विश्वास था। मेरे दोस्त गौतम का मैं आभारी हूँ जिसने क़िताब को रूप दिया और उसे साकार बनाया। शैलजा की लेखन कला और ग्रेगरी के सम्पादन ने इसे पढ़ने लायक बना दिया, और मैं इनका भी आभारी हूँ।

मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा शायद मेरे बेटे मंसूर और ज़हीर, बेटी अलीशा और पोता मिखाइल थे, जिनके लिए मैं कुछ ऐसा लिखना चाह रहा था जिसे बार-बार पढ़कर वो गर्व और प्यार से मुझे याद करें।

मैं अहसानमंद हूँ पुलिस कमिश्नर एस. रामामूर्ति और एस.के. बापट का, जिनके नेतृत्व और मार्गदर्शन से मैंने अपनी क्षमता से कहीं अधिक बढ़ कर काम किया।

अध्याय 1

ड्रामा आधी रात का

मैं अभी सोया ही था कि फ़ोन की घंटी बजने लगी। देर रात की पार्टी के बाद दिमाग में धुंधलापन सा छाया था। मैंने बैड-लैंप जलाया और रिसीवर उठाया। 'इज़ इट खान?' 'हाँ' बोलते ही मैंने मुंबई के नव-नियुक्त पुलिस कमिश्नर की आवाज़ पहचान ली।

'खान, बेहरामपाडा में दंगे शुरू हो गए हैं। ये स्थानीय पुलिस के बस के बाहर लगता है। क्या तुम अभी के अभी वहां जा सकते हो?'

नहीं! मेरा शरीर भन्नाया। महाराष्ट्र स्टेट रिज़र्व पुलिस फोर्स में इंस्पेक्टर जनरल के पद पर मेरी पदोन्नति होने का जश्न अभी खत्म भी नहीं हुआ था! मैं तो सपने देख रहा था, थोड़ी आजादी, थोड़ा टैनिस, थोडी नींद.....पर ये क्या हो गया?

एडिशनल कमिश्नर ऑफ़ पुलिस (उत्तर मुंबई) के पद की कमरतोड़, 24 घंटे प्रति दिन वाली दिनचर्या से शायद मुझे छुटकारा मिलना चाहिए था; नए पद के कामकाज सीखने के लिए, फाइलों से जूझने के लिए समय मिलना चाहिए था। पर कभी न सोनेवाले इस महानगर में पुलिस को वर्दी उतारने का भी वक़्त कहाँ मिलता है! मैंने नए कमिश्नर को वचन दिया था कि जब भी उन्हें ज़रुरत पड़ेगी, मैं हाज़िर हूँगा। फिर भी, मेरी आत्मा से आवाज़ ज़रूर निकली, 'मैं ही क्यूं?' मेरे ही रैंक के चार और

अफ़सर थे जिन्हें भेजा जा सकता था। मैं नशे में ज़रूर था, पर साथ ही मुझे अपने फ़र्ज़ और ज़िम्मेदारी का अहसास हो रहा था। 'मैं तुरंत पहुंचता हूँ' मैंने कहा।

जब आप सो ही नहीं पाते तभी ज़िंदगी शुरू होती है।

फ्रां लेबोवित्ज़

---

2 फरवरी 1993 की प्रातःकाल थी। दो महीनों से महानगर के दो प्रमुख समुदायों के बीच तनाव जारी था। कुछ घंटे पहले ही मैं निश्चिंत होकर सोच रहा था कि मेरा सामना अब उपद्रवी दंगाइयों से नहीं होगा, न ही उन्हें रोकने के लिए टियर गैस या गोलीबारी करनी पड़ेगी। सब-इंस्पेक्टर तेज़ी से जीप दौड़ा रहा था। मैंने शीशा उतारा ताकि ठंडी हवा में दिमाग और साफ़ हो जाए। पीछे गाड़ी में पांच सशस्त्र पुलिस वाले बैठे थे, बाहर की तरफ़ मुँह किये हुए (ब्रिटिश आर्मी की प्रथा थी जब वो आई.आर.ए. से लड़ते थे)। खुली छत वाली जीप में आदमियों को इस तरह तैनात करने से उनको साफ़ दिखता है कि आस-पास क्या हो रहा है। तेज़ी से जवाबी हमला करना भी आसान होता है।

जब हम दंगाग्रस्त क्षेत्र के पुलिस स्टेशन पर पहुंचे, वहां डिप्टी कमिश्नर और उनके अफ़सर अभी जूझ ही रहे थे कि हालात पर कैसे काबू पाया जाय। उत्तेज़ित हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी में रहने वाले और पास के झोपड़पट्टी के निवासी आपस में पत्थरबाजी और जलते चीथड़े बरसा रहे थे। जब वरिष्ठ अफ़सर और उनके साथी, बजाय मैदान में उतरने के, सहायता की मांग करें, इसके दो ही मतलब निकलते हैं – या तो वे डर गए या जनता के साथ ताल-मेल नहीं है, इसलिए उनका सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं।

पुलिस स्टेशन में नगर निगम के स्थानीय कॉर्पोरेटर मौजूद थे; उन्होंने

मुझे पहचाना और स्वागत किया। 'झोपड़पट्टी की जनता बहुत उतेज़िजत है और बिल्डिंग वालों से डरी हुई है।' झोपड़पट्टी के पास छः और सात मालों की बिल्डिंग थीं, जिनकी छतों से पथराव चल रहा था और यही कारण था कि वे अपने आप को असुरक्षित पा रहे थे।

मैंने कहा, 'अन्दर चलकर देखें?' उसने कहा 'हाँ, पर सिर्फ आप ही आइये।' मैं इस इलाके को जानता था क्योंकि यह कभी मेरा अधिकार क्षेत्र था। दंगे शुरू होने के बाद भी यहाँ मैं आया करता था और जगह की मुझे पहचान थी। अन्दर की कई गलियाँ, उनके पास बहते हुए नालों से भी तंग हैं। वहां गाड़ी लेकर जाना असंभव है। ऐसी जगह से जब मार-काट की ख़बर आती है तो एक दिलेर अफ़सर भी वहां जाने से हिचकता है और सोचता है *'क्यों मैं अपनी जान खतरे में डालूं?'* यहाँ प्रवेश होने के बाद आपके साथ कुछ भी हो सकता है – बदमाश आपको घेरकर आप पर आसानी से वार कर सकते हैं। मौजूदा हालात में, सच पूछिए तो, ऐसी जगह ख़तरनाक थी। यह मैं ख़ूब समझता था।

मेरे कार्यकाल के दौरान मैं इलाके के ताने-बाने से वाकिफ़ था और यहाँ के कुछ लोग मुझे पहचानते भी थे। रास्ते में मुझे वायरलेस से यहाँ के हालात की गम्भीरता का अंदाजा तो हो ही गया था। ऐसे समय में मुस्तैद रहना और पहले से ही कुछ तैयारी कर लेना उचित रहता है। साथ ही मुझे यह भी एहसास था कि संवेदनशील इलाके में पारंपरिक रणनीति प्रभावशाली नहीं हो सकती। यह सोचकर मैंने रणनीति बनानी भी शुरू भी कर दी थी। पर इस रणनीति में मेरे छः अफ़सर भी शामिल थे। मुझे अकेले जाना पड़ेगा, यह मैंने सोचा ही नहीं।

ज़ाहिर था कि निवासियों का वर्दी वालों पर से विश्वास उठ चुका था वर्ना अभी तक दंगे ख़तम हो चुके होते। उनके शिकवे जायज़ थे क्योंकि अभी तक छतों से हमलावरों को हटाया नहीं गया था। मैंने यह भी देखा कि अपने बचाव के लिए निवासी झोपड़पट्टी के काले गेट के भीतर ही

कैद थे। किसी ने इलाके की बिजली भी काट दी थी। मेरी ग़लती थी कि मैंने इसके बारे में सोचा नहीं था और मेरे हाथ में टार्च भी नहीं थी। आप जितनी भी तैयारी कर लें, ज़िन्दगी हर क़दम आपको हैरान कर ही देती है।

अँधेरा और सन्नाटा, या तो सहायक दोस्त हो सकते हैं या जानी दुश्मन। इस वक़्त अँधेरा हमारे भीतर के डरों को जगाने का काम कर रहा था। चारों तरफ़ मानो बेचैनी की चादर सी फैली हुई थी। गेट के एक तरफ़ जहाँ छतें खूंखार दंगाइयों से भरी हुई थीं; वहीं दूसरी तरफ़ लाठी, सरिये और हॉकी से लैस निवासी थे। दंगाइयों का प्रिय हथियार – मोलोटोव कॉकटेल था – पेट्रोल से भरी बोतलें, जिनमें जलाने और विस्फ़ोट के लिए बत्ती डाली जाती है। स्थिति गंभीर थी और बिना दोबारा सोचे मैंने तय किया कि मैं कॉर्पोरेटर और उसके दो आदमियों के साथ अन्दर जाकर स्थिति को सँभालने की कोशिश करूँगा।

क्या आपने कभी अपने आप को घोर अँधेरे में किसी भूल-भूलैयाँ में खोया हुआ पाया है? जहाँ अपनी आहट आपको डरा दे? जहाँ चारों ओर परछाइयों के सुलगते क्रोध का एहसास तो आप कर सकते हो पर कुछ दिखाई न दे? ऐसे ही हालातों का मैं कई बार सामना कर चुका था पर दिन की रौशनी में। इधर इस घोर अँधेरी रात में, यदि कहीं कॉर्पोरटर और उनके आदमी अचानक मुझसे बिछड़ जाते, मैं शायद ही बाहर निकल पाता।

रात के 3 बजे, इस दंगा ग्रस्त इलाके के बीच मैं समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि आम आदमी (या इसे सामूहिक चेतना कहिये) कैसे इतना उत्तेज़ित हो सकता है कि वो अपने और अपनों की जान खतरे में डाल दे?

हम दुश्मन से मिल चुके हैं, और वह हम ही हैं।

वाल्ट केली

मैं आधे घंटे तक उन सुनसान अँधेरी गलियों में घूमता रहा, कॉर्पोरटर के साथियों की रौशनी के सहारे; निवासियों के मन में सुलगती उस लाचारी, आक्रोश, अविश्वास और नफ़रत को समझने की कोशिश करते-करते। अचानक आवाज़ सुनाई दी 'खान साहब आ गए।' मेरे सामने कुछ आधे दर्जन लोग खड़े थे। वे बहुत गुस्से में थे और यदि मैं अपने वर्दी वाले अफ़सरों के साथ यहाँ आया होता तो ये हम पर टूट पड़ते और बाहर बिल्डिंग पर हमला बोल देते।

ऐसी परिस्थिति में ज़रूरी था कि तनाव को जल्द से जल्द कम किया जाय हालाँकि इसमें ख़तरा ज़रूर था। इसीलिए मैंने अकेले जाने का फैसला लिया था। विनम्रता से मैंने उनसे आग्रह किया कि शांत होकर वे घर लौटें और कानून को अपने हाथ में नहीं लें। उनके घावों पर मरहम लगाते हुए मैने उन्हें आश्वासन दिया कि उन पर पथराव करने वालों को मैं सज़ा ज़रूर दिलवाऊंगा। कॉलोनी की तंग गलियों में जहाँ खतरा ज़रूर था, कुछ फायदे भी थे; यहाँ लोगों के बीच रहकर, उनके कंधे से कन्धा मिलाकर, आप उनसे एक क़रीबी रिश्ता बना सकते हैं

शायद इसी नज़दीकी के कारण कुछ लोगों ने मुझ पर विश्वास किया कि मैं उन्हें इन्साफ दिलाऊँगा। हमें मालूम था कि यहाँ ज़्यादातर लोग अनपढ़ हैं, कई किस्म के धंधे करते हैं और कानून की इज्ज़त तो शायद ही करते हैं। फिर भी, उन पर हो रहे हमलों को जायज़ तो नहीं बताया जा सकता।

साम्प्रदायिक दुश्मनी को रातों-रात नहीं सुलझाया जा सकता; क्योंकि घाव गहरे होते हैं और ज़ख़्म भरने में समय लगता है। दंगे-फसाद जहाँ विद्यार्थी या मजदूर वर्ग को लेकर हो, वहां नरमी से पेश आना ज़रूरी होता है। पर ऐसे विचार वहाँ उचित नहीं जहाँ सांप्रदायिक दंगे चल रहे हों। ऐसी स्थिति में आपको पुलिस स्टेशन में सिखाये गए कायदे और प्रशिक्षण बिलकुल काम नहीं आते। खून पर उतारू झुण्ड को आप धारा 144 नहीं पढ़ा सकते!

ऐसी कठिन परिस्थिति से निपटने के लिए पुलिस लाठी-चार्ज का सहारा ले सकती है। जब इससे काम न चले तो टियर-गैस का प्रयोग कर सकती है। जब इससे भी भीड़ काबू में ना आये तो गोली चला सकती है, वो भी कमर के नीचे।

हर सांप्रदायिक दंगे में एक पक्ष का पलड़ा भारी होता हैं। यहाँ भी छत पर से हमला करने वालों का पलड़ा भारी था। दंगे बंद करने के लिए उनको रोकना ज़रूरी था; अभी और इसी वक़्त!

मैंने जब झोपड़पट्टी निवासियों को आश्वासन दिया कि हमलावरों को मैं ख़ुद रोकूंगा, तब उन्हें कुछ तसल्ली मिली और उन्होंने मान लिया कि वे जवाबी हमला नहीं करेंगे।

पुलिस स्टेशन पहुँचते ही छतों पर से हमला करने वालों को हटाने के लिए मैंने पुलिस का एक दल रवाना कर दिया। कानून के रक्षक और भक्षक के बीच मुठभेड़ स्वाभाविक होती है, ये हर पुलिसवाला जानता है और हुआ भी कुछ ऐसा ही। पर हम अंत में, 6:30 बजे, उपद्रवियों को हटाकर, अमन कायम करने में कामयाब हो ही गए। मुझ पर इल्ज़ाम ज़रूर था कि मैंने लोगों के साथ (जो जलती मशालों, पत्थर, इत्यादि से लैस थे) अनुचित व्यवहार किया; पर यह तो होना ही था। हर जंग में एक पक्ष को लगता है कि उनके साथ न्याय नहीं हुआ।

जहाँ एक ओर आपको दंगों से निपटने का अधिकार मिला हो और दूसरी तरफ़ लोगों की रक्षा का दायित्व, ऐसी स्थिति चुनौतीपूर्ण होती हैं, जैसे वो रात। एक निष्क्रिय ज्वालामुखी की तरह। यदि सही समय पर सही निर्णय नहीं लिया, तो ज्वालामुखी फट सकता है। उस वक़्त ख़ुद पर विश्वास होना ज़रूरी है; चुनौती का सामना करने के लिए आपको मन और तन से मज़बूत होना ज़रूरी है। भाग्यवश, मुझे ख़ुद पर हमेशा से विश्वास था। साथ ही उन लोगों का विश्वास, जो मैं जीत पाया, मेरे पक्ष में काम आया। जब आप किसी उत्तेज़ित गुट को समझाने में सफ़ल होते

हैं कि आप उनके साथ हो तो वो आपको शान्ति से सुनेंगे और आपकी बात मानेंगे।

मुझे यह भी भरोसा था कि यदि हिंसा बेकाबू हो जाये, तो मेरी पुलिस की टीम मेरे साथ है। जब हालात गंभीर हों और आप अपने साथियों से बोलते 'मैं जा रहा हूँ, ज़रुरत पड़े तो आ जाना'; वो कभी भी आपका साथ नहीं छोड़ेंगे, ये मेरा विश्वास है। तरक्की की सीढ़ीयाँ चढ़ते-चढ़ते मुझे ये तजुर्बा हो गया था कि असफ़लता का कारण अक्सर नेतृत्व का अभाव होता है। चाय की चुस्की लेते हुए आप अपनी टीम को रिमोट से नहीं चला सकते; पर यदि उन्हें यह एहसास हो जाए कि जोखिम में आप भी उनके साथ हैं, तो वो आपका आदेश ज़रूर मानेंगे।

पर याद रहे, बहुत ज़्यादा विश्वास भी कभी आपको मुश्किल में डाल सकता है! जब आप लीडर होते हैं तो थोड़ा तो रुआब जमाना ज़रूरी होता है। पर ये आपको इस भ्रम में भी डाल सकता है कि आप कभी चूक ही नहीं सकते। पुलिस के व्यवसाय में ऐसी धारणा घातक सिध्द हो सकती है। एक बार की बात है। मुजरिमों का पीछा करते-करते मैं दो छतों के बीच लगी लकड़ी की पट्टी पर भाग पड़ा। अगले दिन, टेलीविजन वालों ने जब मुझसे कहा कि मैं फिर से एक बार वो 'करतब' दिखाऊँ; उस समय एहसास हुआ कि मैं तैश में आकर कितना जोखिम और बेवकूफी वाला काम कर बैठा।

किसी भी क्षेत्र में लीडर को सफ़ल होने के लिए निपुणता और आज के दौर में, राजनेताओं से मधुर सम्बन्ध होना भी आवश्यक है। कभी आपका विश्वास और क़ाबलियत आपके वरिष्ठ अफ़सर को या किसी नेता की आँखों में खटक जाए, तो आप मुसीबत में पड़ सकते हैं। पर मेरे लिए तो सिर्फ जनता और मेरे साथियों का विश्वास ही मायने रखता है।

सुबह के 6:30 बज गए थे जब हमारी ये लम्बी रात समाप्त हुई। हमारे दिलों में जो संतुष्टि की लाली थी उसके सामने मुंबई के आसमान

पर छा रही लाली फीकी लगी। बच्चे, बूढ़े और तनाव ग्रस्त निवासियों के चेहरों पर अब चिंता नहीं थी। सही वक़्त पर कार्रवाई किये जाने के कारण बहुत बड़ा हत्याकांड टल गया। बुराई पर अच्छाई की जीत फिर हुई।

जब ये देर रात्रि का ड्रामा शुरु हुआ था, मैं पार्टी के नशे में चूर था और सच कहूँ तो गुस्से में था कि मुझे अपना मखमली बिस्तर छोड़कर इस फसाद के बीच क्यों जाना पड़ रहा है! पर अब मुझे लगा कि इसके सिवाय मैं और कुछ भी तो नहीं कर सकता था।